विज्ञान किसी एक महाद्वीप की देन नहीं है

राहुल रॉय

विज्ञान, गणित और समाज के इतिहास के अध्ययन में लगभग हर मोड़ पर युरोपकेंद्रित मत से सामना होता है। यह तकलीफदायक होता है। इस सोच की शुरुआत कोई 200 साल पहले हुई थी कि तमाम 'सभ्य' चीज़ें युरोप में जन्मी हैं। यह वह समय था जब विश्व दो भागों में बंटा था - एक तरफ थे 'अंधकारमय' महाद्वीप और दूसरी तरफ 'रोशनखयाल' औपनिवेशिक माईबाप। युरोपकेंद्रित मत ने एक ओर तो यह स्थापित किया कि अंधकारमय महाद्वीप सचमुच में घुप अंधेरे में डूबे हैं, वहीं दूसरी ओर यह उपनिवेशकों की इस इच्छा का भी प्रतीक था कि सभी सभ्य चीज़ों के स्रोत के रूप में उन्हें वैधता प्राप्त हो जाए। कई समाजशास्त्री इस युरोपकेंद्रित मत को उस बीज के रूप में देखते हैं जिसने आगे चलकर हिटलर के आर्य श्रेष्ठता के विषवृक्ष को जन्म दिया। कुछ समय से उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम विभाजन से ऊपर उठकर कई इतिहासकारों ने युरोपकेंद्रित मत की मूर्खता को समझा है। यह भी समझा गया है कि किस तरह यह मत विकास और इतिहास के अध्ययन (चाहे वह विज्ञान का हो या इसके इतर) की राह में रोड़ा भी बना है।

बदकिस्मती से हम भारतीयों ने इन गलतियों से कुछ नहीं सीखा है और हम विज्ञान, गणित, समाज, भाषा आदि में भारतकेंद्रित मत को आगे बढ़ाने पर अड़े हुए हैं। इसी का नतीजा है कि हमें बताया जा रहा है कि 'संस्कृत सभी भाषाओं की जननी है', 'सिंधु घाटी सभ्यता वैदिक सभ्यता का ही अंग है', 'भारत ने विश्व को शून्य का उपहार दिया' या मुखर्जी का यह बेतुका कथन कि 'शून्य की गणितीय संकल्पना भारत में 17000 सालों से आध्यात्मिक रूप से भी मौजूद थी।' मिथक-निर्माण की इस प्रक्रिया का तत्काल कारण तो शायद राजनैतिक है लेकिन, युरोपकेंद्रवाद की ही तरह, ये नए मिथक हमारी प्राचीन परम्पराओं के किसी भी गम्भीर अध्ययन को यकीनन चोट पहुंचाएंगे।

यहां यह नहीं कहा जा रहा है कि प्राचीन भारत में विज्ञान और गणित की महत्वपूर्ण और नवीन खोजें नहीं हुईं। लेकिन यह कहना कि हमने ही सब कुछ किया या दूसरी सभ्यताओं द्वारा किए गए कामों को खारिज करना और तुच्छ साबित करना, अपनी साझा इंसानी विरासत की सही समझ बनाने में सहायक नहीं होगा।

इस लेख में हम दो विषयों को विस्तार से देखेंगे। सबसे पहले हम बेबीलॉन सभ्यता से मिले उन लघु शिलालेखों पर चर्चा करेंगे जिनमें पायथॉगोरस सिद्धांत की बात कही गई है। इसके बाद हम शून्य के उद्भव व इतिहास की व्याख्या करेंगे। यहां मैं अमर्त्य दत्ता के लेख का ज़िक्र करना चाहूंगा। शुल्ब सूत्र में मिले पायथॉगोरस सिद्धांत के बारे में वे लिखते हैं, 'बेबीलोन व कई अन्य सभ्यताएं भी पायथॉगोरस सिद्धांत से वाकिफ थीं लेकिन वहां ज़्यादा ज़ोर संख्यात्मक पक्ष पर था, रेखागणित पर नहीं।' शून्य के बारे में वे लिखते हैं, 'भारत ने विश्व को एक अनमोल उपहार दिया - दाशमिक प्रणाली...। इसकी शक्ति दो प्रमुख तत्वों में है - स्थानीय मान की अवधारणा और शून्य का एक अंक के बतौर उपयोग।' यहां यह ज़िक्र लाज़मी है कि प्राचीन चीनी सभ्यता में पायथॉगोरस

सिद्धांत काउ-कू परिणाम के नाम से ज्ञात था और सम्बंधित रेखागणित चित्र सुआन-थू कहलाता था।

अधिकांश रेखागणित, बीजगणित और गणना-सूत्र (एल्गोरिद्म) ज़रूरत के हिसाब से पनपे हैं। कारण चाहे धार्मिक वेदियों का निर्माण हो, ज़मीन की नपाई हो, खगोल और ज्योतिष उद्देश्यों से तारों और ग्रहों की स्थितियों की गणना हो या कैलेण्डर बनाना हो। इसलिए यह कहना गलत न होगा कि संभवतः कुछ गणितीय विधियां कई सभ्यताओं में स्वतंत्र रूप से पनपी हैं। वाकई, तमाम उपलब्ध प्रमाण किसी एकमेव मूल के सिद्धांत के विरुद्ध जाते हैं।

बेबीलॉन की नदियां

मेसोपोटामिया की बेबीलॉन सभ्यता लगभग 2000 ई.पूर्व में दज़ला और फरात नदियों के बीच स्थित थी। इससे पहले यहां 3500 ई.पूर्व से सुमेर सभ्यता फली-फूली थी। इस सभ्यता में शहर बनाए गए, प्रशासनिक व्यवस्था बनाई गई, कानूनी व्यवस्था पनपी, सिंचाई के लिए नहरें बनीं और डाक सेवा भी विकसित हुई। बेबीलॉनवासियों ने लगभग 2000 ई.पूर्व में मेसोपोटामिया पर हमला किया और सुमेर लोगों को हराने के बाद 1900 ई.पूर्व के आसपास बेबीलॉन में अपनी राजधानी बनाई।

सुमेर सभ्यता ने लिखाई की शुरुआत की थी और उनके पास गिनती का तरीका भी था। कीलाक्षर लिपि को गीली मिट्टी की पट्टियों पर उकेरकर धूप में सुखा लिया जाता था। इस लिपि को पढ़ने का श्रेय सर हेनरी क्रेस्विक रॉलिंसन को जाता है। मशहूर हम्मुराबी संहिता भी बेबीलॉन काल की ही है और इसमें प्रशासन के लगभग 280 नियम हैं।

बेबीलॉन की खुदाई में मिट्टी की कई लिखित पट्टियां व शिलालेख मिले हैं। इनमें से हम गणित से सम्बंधित कुछ पट्टियों पर बात करेंगे। बेबीलॉनवासियों द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली अंक पद्धति स्थानीय मान आधारित पद्धति है जिसका आधार 60 होता था। इतिहासकारों ने इस साठ-आधार पद्धति के इस्तेमाल के कई कारण प्रस्तुत किए हैं। बेबीलॉनवासियों ने दिन को 24 घण्टों में बांटा था तथा हर घण्टा 60 मिनट का हर मिनट 60 सेकण्ड का होता था। समय की गणना की यह साठ-आधारित प्रणाली आज भी जारी है।

हम यहां उन पट्टियों पर ही बात करेंगे जो पायथॉगोरस सिद्धांत से सम्बद्ध हैं। खास तौर पर YBC7289 (येल विश्वविद्यालय संग्रह), प्लिम्पटन 322 (कोलम्बिया विश्वविद्यालय संग्रह), और अभी हाल में खोजी गई सूसा पट्टी (शूशा, ईरान) और तेल धीबाई शिलालेख (बगदाद)। ये सभी 1900 से 1600 ई.पूर्व के बीच की हैं।

आगे बढ़ने से पहले यहां हम लंदन के ब्रिटिश संग्रहालय में रखी पट्टी पर लिखे एक सवाल और उसके समाधान (का अनुवाद) पेश कर रहे हैं -

लम्बाई 4 है और कर्ण 5 चौड़ाई क्या होगी?
साइज़ पता नहीं है।
4 गुना 4 होगा 16
5 गुना 5 होगा 25
आप 25 में से 16 घटाएं तो बचेगा 9।
9 पाने के लिए मुझे किसमें किसका गुणा करना होगा।
3 गुना 3 होगा 9
चौड़ाई 3 है।

कहने की ज़रूरत नहीं कि यहां पायथॉगोरस सिद्धांत के रेखागणितीय पक्ष की बात हो रही है। बेबिलॉनवासी पायथॉगोरस सिद्धांत के रेखागणितीय पक्ष से वाकिफ थे इस तथ्य को और पुष्ट करने के लिए हम YBC7289 को देखते हैं।

इस पट्टी पर बना चित्र (चित्र 1) देखें। इस चित्र में चौकोर के एक तरफ 30 खुदा है जबकि आड़े कर्ण पर दो संख्याएं 1 24 51 10 और 42 25 35 लिखी हैं। हम यह जानते हैं कि बेबिलॉन में साठ

चित्र 1

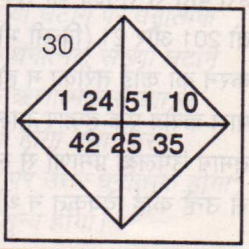

आधारित प्रणाली प्रचलित थी। यह माना जा सकता है कि संख्याओं के बीच की खाली जगह संख्याओं का स्थानीय मान दर्शाती है और पहली संख्या 1.245110 (आधार 60) और दूसरी संख्या 42.2535422535 (आधार 60) है। इन मान्यताओं के आधार पर दाशमिक प्रणाली में ये संख्याएं क्रमशः 1.41421296 और 42.4263888 होंगी। दूसरी संख्या दरअसल 30x1.41421296 होगी। (ध्यान दें कि 2 का वर्गमूल 1.41421356 (आधार 10) होता है। इससे यह तो प्रमाणित हो जाता है कि बेबीलॉनवासी कभी पायथॉगोरस के रेखागणित को जानते थे। लेकिन इससे यह भी प्रश्न उठता है कि वे 2 के वर्गमूल की इतनी सही गणना कैसे कर पाए। इसे लेकर अलग-अलग मत हैं। यह सवाल भी महत्वपूर्ण है कि क्या बेबीलॉनवासियों के पास पायथॉगोरस सिद्धांत का प्रमाण उपलब्ध था या क्या उस समय प्रमाण जैसी कोई अवधारणा भी थी।

शून्य का इतिहास

यहां हम शून्य को एक स्थान दर्शाने वाले चिन्ह और एक अंक के बतौर मानने के सिद्धांत का इतिहास देखेंगे। हम देखेंगे कि शून्य का एक स्थान चिन्ह के रूप में माना जाना उत्तर वैदिक भारत में ही नहीं बल्कि उससे पहले बेबीलॉन प्रणाली में और उसकी समकालीन मय सभ्यता में भी ज्ञात था। बहुत सम्भावना है कि इन तमाम जगहों में इस प्रणाली का स्वतंत्र रूप से विकास हुआ। हालांकि शून्य को एक अंक के रूप में प्रयुक्त करना साफ तौर पर भारत से पनपा है। और इसे इस रूप में देखने वाला पहला शख्स शायद ब्रहगुप्त था।

एक स्थान चिन्ह के रूप में शून्य की अहमियत को इस बात से समझा जा सकता है कि अगर यह न होता तो 201 और 21 (किसी भी आधार में) के बीच अंतर करने का कोई तरीका न होता। वैसे बेबीलॉनवासियों के पास करीब एक हज़ार सालों तक यह युक्ति नहीं थी और तमाम उपलब्ध प्रमाणों से लगता है कि इससे फैले भ्रमों से उन्हें कोई दिक्कत न थी।

2000 ईसा पूर्व के बेबीलॉन शिलालेखों में वर्णमाला-संख्या प्रणाली और स्थानीय मान प्रणाली का मिला-जुला रूप नज़र आता है - यह प्रणाली (शिलालेख मिलने की जगह के आधार पर) मारी प्रणाली कहलाई। बाद में 700 ई.पूर्व के आसपास बेबीलॉनवासियों ने इसको और बेहतर बनाते हुए इसे स्थानीय मान प्रणाली तक पहुंचा दिया था। हालांकि इस प्रणाली की अपनी सीमाएं थीं। मसलन 36 को तीन 10 और छः 1 को पास-पास लिखकर दर्शाना पड़ता था।

700 ई.पूर्व के करीब किश (ईराक) में मिला शिलालेख शून्य के इस्तेमाल का पहला प्रमाण है। इस शिलालेख के लेखक बेल-बैन-अप्लू ने शून्य प्रदर्शित करने के लिए तीन हुकों का इस्तेमाल किया है। ईसा पूर्व छठी और तीसरी सदी के बीच लिखे शिलालेखों से पता चलता है कि बेबीलॉनवासी शून्य के लिए कई तरह के चिन्हों का इस्तेमाल करते थे। शून्य बताने के लिए वे एक फच्चर या दो फच्चरों का इस्तेमाल करते थे। लगभग 400 ईसा पूर्व के प्रमाण मिले हैं जब 2"1 को 21 से भिन्न दिखाने के लिए इसका उपयोग किया गया है। हालांकि आश्चर्य है कि इकाई के स्थान पर या किसी संख्या के आखरी अंक में शून्य का इस्तेमाल (जैसे 21") नहीं दिखाई देता है। सूसा से मिला शिलालेख कहता है कि 'देखो, 20 ऋण 20 तो..... होता है।' शून्य की ओर यह इशारा संख्याएं दर्शाने के लिए शून्य के उपयोग से काफी अलग है। एक अंक के रूप में शून्य की धारणा विकसित नहीं हुई थी और लगता है कि यह एक शिलालेख लेखक की क्षणिक सनक भर था।

यूनानी गणितज्ञों के पास एक स्थानीय मान अंक प्रणाली न थी और इसलिए स्थानीय मान संकेत के लिए उन्हें शून्य की आवश्यकता ही न थी। एटिक प्रणाली के नाम से पुकारी जाने वाली उनकी अंक प्रणाली कोई 500 ई.पूर्व पुरानी है। इसमें 1, 5, 10, 50, 100, 500, 1000, 5000, 10,000 और 50,000 इन संख्याओं के लिए विशिष्ट संकेत थे। इसलिए 3202 संख्या को XXXHHII लिखा जाता था। एटिक प्रणाली और रोमन

अंकों के बीच सीधा सम्बंध है। हालांकि यूनानी खगोलवेत्ता, जिन्हें बड़ी-बड़ी संख्याओं का इस्तेमाल करना पड़ता था, उन्हें एटिक प्रणाली में बड़ी संख्याओं को लिखना काफी दुष्कर लगता था और वे बेबीलॉनवासियों की साठ-आधार प्रणाली का इस्तेमाल करते थे। इसलिए टोलेमी की खगोलशास्त्र पर लिखी कृति अल्माजेस्ट (130 ईस्वीं) में साठ-आधारित अंक प्रणाली के साथ-साथ रिक्त स्थान दर्शाने के लिए 0 संकेत का उपयोग देखा जा सकता है। शायद यह 0 संकेत का पहला उपयोग है। वैसे इस काल में यूनानी खगोलशास्त्रियों ने शून्य के लिए अन्य संकेतों का भी इस्तेमाल किया है।

भारतीय उप महाद्वीप की प्राचीनतम लिखाई सिंधु घाटी सभ्यता (2500-1500 ईसा पूर्व) की है। वैसे जब तक इसे पढ़ नहीं लिया जाता, हम भारतीय अंक प्रणाली से इसका सम्बंध पता कर पाने की स्थिति में नहीं होंगे। अशोक के शासनकाल (273-235 ई.पूर्व) की ब्राम्ही में लिखी राजघोषणाओं में सर्वप्रथम अंक नज़र आते हैं, वे भी केवल कुछ ही अंक (1, 2, 4 व 6)। दूसरी सदी ईसा पूर्व में शुंग और मगध शासन के दौरान कुछ और अंक देखे गए।

ईसा पश्चात् पहली और दूसरी सदी में भारत के कई स्थानों से अपेक्षाकृत सम्पूर्ण अंक प्रणालियां देखने को मिलती हैं। ब्राह्मी संख्याओं के उद्भव को लेकर बहस जारी है। इस बात पर भी कुछ बहस है कि क्या इन अंकों के विकास में बाहरी प्रभाव थे। वैसे जी. इफ्राह का मत है कि ब्राह्मी अंक किसी बाहरी प्रभाव से नहीं बने थे।

चूंकि भारतीय खगोलशास्त्र और ज्योतिष पर यूनानी खगोलशास्त्र का काफी प्रभाव रहा है इसलिए कई इतिहासकारों का मानना है कि भारतीय अंकों में स्थानीय मान प्रणाली का स्रोत बेबीलॉन प्रणाली ही है। हालांकि यह मत खारिज नहीं हुआ है मगर इफ्राह इस पर गम्भीर आपत्ति उठाते हैं। (यहां भारतीय खगोलशास्त्र और ज्योतिष पर यूनानी प्रभाव से आशय है - राशियों और कई खगोलीय शब्दों के भारतीय नाम का मूल यूनानी है। इसी तरह सबसे बड़े दिन और सबसे छोटे दिन की लम्बाई का अनुपात जो 3:2 दिया गया है - भारत में किसी भी जगह की अपेक्षा बेबीलॉन के लिए यह अनुपात ज़्यादा सही था।)

सूर्यसिद्धांत (600 ईस्वीं) में हम 488,203 और 232,238 जैसी संख्याएं देखते हैं। इनमें अंक एक के बाद एक लिखे हैं और संख्या में अंकों के परिमाण का सहारा नहीं लिया गया है। यहां स्थानीय मान प्रणाली में शून्य की अपनी जगह है लेकिन उस गोलाकार रूप में नहीं जैसा हम आज जानते हैं। दरअसल लोकविभाग (458 ईस्वी) पहला ज्ञात भारतीय जैन खगोलशास्त्रीय ग्रंथ है जिसमें स्थानीय मान प्रणाली के साथ शून्य का इस्तेमाल किया गया है। आर्यभट ने संख्याएं दर्ज़ करने का स्वर और व्यंजनों पर आधारित एक बढ़िया तरीका खोजा था। वैसे वर्गमूल और घनमूल की गणना का आर्यभट का तरीका स्थानीय मान प्रणाली के इस्तेमाल की ओर इशारा करता है।

यहीं से भारतीय गणितज्ञ शून्य को अंक मानने का महत्वपूर्ण कदम उठाते हैं और इससे तमाम गणितीय क्रियाएं करते हैं। वराहमिहिर (575 ईस्वीं) गणितीय क्रियाओं में शून्य के इस्तेमाल का ज़िक्र करते हैं और ब्रह्मगुप्त (625 ईस्वीं) ब्रह्मस्फुटसिद्धांत में इनकी व्याख्या करते हैं। ब्रह्मगुप्त शून्य की परिभाषा उस मात्रा के रूप में करते हैं जो किसी संख्या को खुद से घटाने पर प्राप्त होती है। आगे चलकर वे शून्य में जोड़ना, घटाना, गुणा और भाग करने की क्रियाविधि भी विस्तार से बताते हैं। वे लिखते हैं -

शून्य और एक ऋणात्मक संख्या का जोड़ ऋणात्मक होगा जबकि धनात्मक संख्या और शून्य का जोड़ धनात्मक होगा, शून्य में शून्य का जोड़ शून्य होगा।

शून्य से एक ऋणात्मक संख्या घटाने पर धनात्मक उत्तर होगा जबकि शून्य से एक धनात्मक संख्या घटाने पर उत्तर ऋणात्मक होगा, एक ऋणात्मक संख्या से शून्य घटाने पर उत्तर ऋणात्मक होगा तथा किसी धनात्मक संख्या से शून्य घटाने पर उत्तर धनात्मक होगा, शून्य से शून्य घटाने पर उत्तर शून्य होगा।

हालांकि शून्य से भाग देना समस्यामूलक था।

ऋणात्मक या धनात्मक संख्याओं को शून्य से भाग देने पर एक भिन्न संख्या प्राप्त होगी जिसमें हर शून्य होगा। शून्य को ऋण या धन संख्या से भाग देने पर या तो शून्य प्राप्त होगा या एक भिन्न प्राप्त होगी जिसमें शून्य अंश होगा और हर में कोई परिमित संख्या होगी। शून्य को शून्य से भाग देने पर उत्तर शून्य होगा।

महावीर (830 ईस्वी) ने गणित संग्रह में ब्रह्मपुत्र के काम की व्याख्या की और शून्य से भाग देने सम्बंधी ब्रह्मपुत्र की व्याख्या की अपर्याप्तता को भांप कर वे लिखते हैं कि *"शून्य से भाग देने पर संख्या अपरिवर्तित रहती है।"* बाद में भास्कर (1150 ईस्वीं) अपनी पुस्तक लीलावती में महावीर की इस गलती को सुधारने की कोशिश करते हैं:

"किसी संख्या को शून्य से भाग देने पर एक भिन्न प्राप्त होती है जिसका हर शून्य होता है। यह भिन्न एक अनंत राशि है।"

हालांकि यहां हमें अनंत की गणितीय धारणा के उपयोग की एक झलक देखने को मिलती है लेकिन फिर भी भास्कर इस आधुनिक धारणा तक नहीं पहुंच पाए थे कि शून्य से विभाजन स्वीकृत नहीं है। यह समस्या उन अरब और उसके बाद युरोपीय गणितज्ञों को भी परेशान करती रही जिन्होंने एक अंक के रूप में शून्य का उपयोग मूलतः भारतीय ग्रंथों के अनुवादों से सीखा था।

और अंत में

शून्य के संक्षिप्त इतिहास की गाथा को पूरा करने के लिए और प्राचीन काल में विज्ञान के विचारों के एक ही स्रोत से उभरने की धारणा के विरुद्ध दलील को पुख्ता करने के लिए यह उल्लेख लाज़मी है कि 665 ईस्वीं तक मय सभ्यता में 20 आधार वाली स्थानीय मान अंक प्रणाली प्रचलित थी। वहां शून्य का चिन्ह भी था और उसका इस्तेमाल भी होता था। यह भी पता चला है कि स्थानीय मान अंक प्रणाली से पहले ही वे शून्य का इस्तेमाल करते थे। मय सभ्यता के कैलेण्डर और खगोलशास्त्र में उनके विकास को देखकर लगता है उनकी गणितीय क्षमताएं भी काफी विकसित रही होंगी। यहां तक कि युरोप/भारत केंद्रित मतों के घनघोर समर्थकों को भी मानना ही होगा कि मय सभ्यता स्वतंत्र रूप से पनपी थी, उस पर प्राचीन विश्व का कोई प्रभाव न था।

(स्रोत फीचर्स)

अगले अंक में

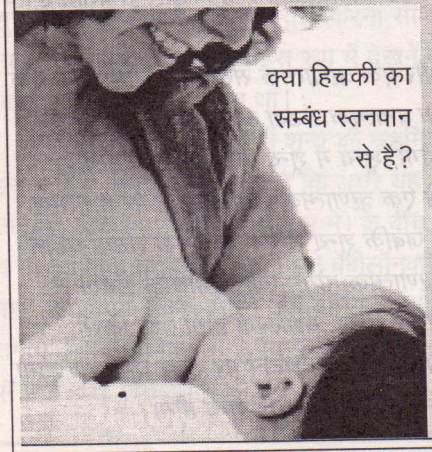

क्या हिचकी का सम्बंध स्तनपान से है?

स्रोत अप्रैल 2003
अंक 171

- बसंत इतना रंगीन क्यों होता है?
- इतिहास शिक्षण - विकल्पों की तलाश
- हम हिचकी क्यों लेते हैं?
- बूंद दर बूंद नीला सोना
- घोड़े को नाल क्यों ज़रूरी है?